
प्राचीन भारत में राज्य की अवधारणा

Dr. Rajkumar Singh (Assist. Prof.)

Department of History

S.M.P. Govt. Girls PG College, Madhavpuram, Meerut

Keywords – राज्य, अवधारणा, सप्तांग, प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिंतन, मोक्ष, दण्ड, न्याय, अराजकता

मानव इतिहास के विकास – क्रम में एकांकी जीवन से कबीलाई संस्कृति तक का सफर तत्पश्चात् समाज एवं राज्य के रूप में उसका विकास जानने की जिज्ञासा सदैव ही मानव मस्तिष्क को कचोटती रही है। समाजशास्त्रियों एवं मानवविज्ञानियों ने विश्व के अलग – अलग भागों में समाज एवं राज्य की विकास प्रक्रिया को जानने की लगातार कोशिश की है। भारत में भी प्राचीनतम संस्कृति के अवशेषों के रूप में सिंधु सभ्यता और तत्पश्चात् वैदिक जीवन शैली, ने उस दौर में भी, राज्य की व्यवस्था को सहज एवं सामान्य जीवन का एक प्रमुख अंग स्वीकार किया है। वेदों की उत्पत्ति के साथ ही राज्य की संरचना भी उसी व्यापक व्यवस्था का हिस्सा बन गयी। कालांतर में वाल्मीकी ने रामायण और वेदव्यास ने महाभारत के माध्यम से राज्य एवं राजा का प्रजा के साथ सम्बन्धों को दृष्टांतों के रूप में प्रस्तुत किया।

भारत में राज्य की अवधारणा, राज्य की उत्पत्ति एवं उसका विकास के सम्बन्ध में प्राचीन भारतीय साहित्य में सुव्यवस्थित एवं क्रमबद्ध वर्णन उपलब्ध नहीं है, फिर भी इसके सम्बन्ध में यत्र-तत्र विवरणों का जो उल्लेख मिलता है, उनके आधार पर हम भारत के राज्य की अवधारणा की रूपरेखा प्रस्तुत कर सकते हैं।

प्राचीन भारतीय जीवन दर्शन में धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष, चार पुरुषार्थ बताये गये हैं। इनमें से मोक्ष की प्राप्ति को जीवन का अंतिम लक्ष्य माना गया है, जिसकी प्राप्ति के लिए धर्म, अर्थ, तथा काम तीन साधन स्वीकार किये गये हैं। मनुष्यों के द्वारा प्रयत्न करने का परिणाम राज्य माना गया है।¹ दूसरे शब्दों में, यह

कहा जा सकता है कि प्राचीन भारतीय मान्यतानुसार, मोक्ष की प्राप्ति के लिए राज्य को एक आवश्यक एवं महत्वपूर्ण साधन माना गया है।

राज्य के महत्व को स्पष्ट करते हुए शुक्रनीति में कहा गया है, “जैसे इन्द्र की पत्नी कभी भी विधवा नहीं हो सकती, उसी प्रकार धर्म विमुख लोग भी, जो मोक्ष के आकांक्षी नहीं हैं, राजा (राज्य) के बिना एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकते”² सोमदेव ने “नीतिवाक्यामृत” के पहले ही सूत्र में राज्य को इसलिए प्रणाम किया क्योंकि राज्य ही धर्म और अर्थ का फलदाता है।³ इसी तरह शुक्र ने भी राज्य को इसलिए नमस्कार किया क्योंकि राज्य त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) का फलदाता है।⁴

प्राचीन साहित्य में राज्य के महत्व को स्पष्ट करते हुए राज्यविहीन अराजक दशा के परिणामों को स्पष्ट किया गया। मनुस्मृति के अनुसार राजा के न होने पर जब मनुष्य यत्र-तत्र भागने लगे, तब भगवान ने विश्व की रक्षा के लिए राजा की सृष्टि की।⁵ महाभारत में अराजक दशा के बारे में विस्तार से लिखा गया है। जिसके अनुसार, चिरकाल में मनुष्य बिना राजा के रहते थे। वहाँ मत्स्य- न्याय व्याप्त था। इसको दूर करने के लिए उन्होंने आपस में एक समझौता किया तथा परस्पर विश्वास उत्पन्न किया। पर पारस्परिक विश्वास पर वे चल नहीं सके। तब सभी लोग मिलकर ब्रह्माजी के पास गये और बोले, “हे स्वामी बिना राजा के हम विनाश की ओर जा रहे हैं। हम लोगो को आप एक राजा दें। हम सभी उसकी पूजा करेंगे और वह हमारी रक्षा करेगा” तब ब्रह्मा जी ने मनु को नियुक्त किया। किन्तु मनु ने इसे स्वीकार नहीं किया। उन्होंने कहा कि हम पाप कर्मों से डरते हैं। मनुष्यों पर राज्य करना अत्यन्त कठिन है क्योंकि वे धूर्त एवं झूठे होते हैं। इस पर जनता ने उन्हें आश्वासन दिया कि आप पाप से न डरें। यह उसी को लगता है जो उसे करता है। आपके कोष के लिए हम लोग अपने पशुधन तथा धातुओं का पांचवाँ भाग, अन्न का दसवाँ भाग एवं पुण्य (धर्म) का चौथाई भाग देंगे। इस शक्ति से आप हम लोगों की सुरक्षा उसी प्रकार करें जैसे इन्द्र देवताओं की रक्षा करता है। इस पर मनु ने राजा बनना स्वीकार कर लिया।⁶

आचार्य कौटिल्य ने भी अराजकता एवं परिणामतः राज्य की उत्पत्ति पर प्रकाश डालते हुए कहा है, मत्स्य-न्याय से अभिभूत हुई प्रजा ने वैवस्वत् मनु को अपना राजा बनाया और अपने धान्य का छठा भाग तथा पण्य और सुवर्ण का दसवाँ भाग, उसके भागधेय के रूप में उसे प्रदान करने की व्यवस्था की।

राज्य सम्बन्धी प्राचीन भारतीय अवधारणा में दण्ड को विशेष महत्व दिया गया है और समाज की व्यवस्था को स्थापित करने के लिए दण्ड को एक आवश्यक कारक माना गया है। महाभारत के अनुसार दण्ड द्वारा ही अप्राप्त की प्राप्ति, प्राप्त का परिरक्षण, परिरक्षित का परिवर्द्धन एवं परिवर्द्धित का सदोपयोग और तीर्थादि में वितरण सम्भव है।⁸ अतः समाज की सारी व्यवस्था दण्ड पर आश्रित मानी गयी है। दण्ड के लिए राज्य को आवश्यक माना गया है क्योंकि राज्य को ही व्यक्ति को दण्ड देने का अधिकार है। व्यक्ति, को व्यक्ति दण्ड नहीं दे सकता।⁹

इस प्रकार प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिंतन में राज्य की अवधारणा एक वृहद् स्वरूप में विद्यमान थी। मोक्ष की प्राप्ति, अराजकता का अन्त तथा दण्ड प्रयोग के लिए राज्य की आवश्यकता को स्वीकार किया गया और इन्हीं उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए राज्य नामक संस्था का प्रादुर्भाव हुआ, जो विकास क्रम में शांति, सुव्यवस्था, न्याय तथा सुरक्षा का प्रतीक बन गया और भारतीय समाज एवं संस्कृति के विकास एवं उत्कर्ष में राज्य ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।

प्राचीन भारतीय राजशास्त्र के आचार्यों ने राज्य की जो अवधारणा प्रस्तुत की वह सप्तांग स्वरूप की है, जिसके अनुसार राज्य के सात अंग या प्रकृतियाँ होती हैं। इन्ही सात अंगों अथवा प्रकृतियों के संयोग से राज्य का निर्माण होता है।

महाभारत में राज्य के सात अंग-आत्मा (राजा), अमात्य, कोष, दण्ड (सेना) जनपद, मित्र और पुर बताये गये हैं।¹⁰ मनु ने राज्य की सात प्रकृतियाँ स्वामी, अमात्य, पुर, राष्ट्र, कोष, दण्ड एवं सुहृद् बताये हैं। आचार्य कौटिल्य ने भी राज्य के सप्तांग स्वरूप को स्वीकार किया और राज्य के इन सात अंगों को राज्य की सात

प्राकृतियों की संज्ञा दी है तथा इन्हें स्वामी, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोष, दण्ड और मित्र के नाम से सम्बोधित किया है।¹² आचार्य शुक्र ने भी राज्य का यही स्वरूप स्वीकार किया है। उनके मतानुसार भी राज्य के सात अंग स्वामी, अमात्य, सुहृद् कोष, राष्ट्र, दुर्ग और बल हैं।¹³ इसी प्रकार कामंदक¹⁴ ने भी राज्य के स्वरूप का वर्णन सप्तांग रूप में ही किया है।

स्पष्टतः प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिंतको ने राज्य के स्वरूप की जो अवधारणा प्रस्तुत की वह सप्तांग स्वरूप की है। राज्य को एक शरीर के रूप में स्वीकार किया गया, जिसके सात अंग होते हैं। सातों अंगों का समान महत्व है, ये अंग कार्यविशिष्टता के सिद्धांत पर आधारित हैं। जो अंग जिस कार्य को करता है, वह उसमें विशिष्ट समझा जाता है। उस अंग की अपनी विशिष्टता के कारण कोई अन्य अंग उस कार्य को करने में असमर्थ रहता है। इसी कारण अपने स्थान पर सबका समान महत्व है। इन अंगों की उत्तमता एवं विशुद्धता पर ही राज्य की उत्तमता निर्भर करती है। राज्य के इन अंगों में से यदि एक अंग भी विकारग्रस्त हो जाये तो सम्पूर्ण राज्य का स्वरूप ही विकृत हो जायेगा। राज्य को सुचारु एवं प्रभावशाली रूप से कार्य करने के लिए यह आवश्यक है कि उसके ये सभी अंग स्वस्थ एवं विकार रहित रहें।

संदर्भ सूची

1. डॉ० परमात्माशरण : प्राचीन भारत में राजनीतिक विचार एवं संस्थाएँ, पृ० 259 मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ 2005
2. आचार्य शुक्रः शुक्रनीतिसारः 1.5
3. सोमदेव सूरी : नीतिवाक्यामृत, 1.1
4. डॉ० परमात्माशरण : प्राचीन भारत में राजनीतिक विचार एवं संस्थाएँ, पृ० 259 मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ 2005
5. मनुस्मृति, 7.3
6. महाभारत, शान्तिपर्व, 67.10-28
7. आचार्य कौटिल्यः अर्थशास्त्र, 1.9
8. महाभारत, शान्तिपर्व, 69.77
9. आचार्य कौटिल्यः अर्थशास्त्र 3.1
10. महाभारत, शान्तिपर्व, 69. 62-63
11. मनुस्मृति, 9.294
12. आचार्य कौटिल्यःअर्थशास्त्र 6.1.1
13. आचार्य शुक्रः शुक्रनीतिसार 1.61-62
14. आचार्य कामंदकः कामदंकनीतिसार 4.1